उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अधिकरण) अधिनियम, 1976

(उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 17, 1976)

THE UTTAR PRADESH PUBLIC SERVICES (TRIBUNAL) ACT, 1976

(U.P. Act No. XVII of 1976)

उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अधिकरण) अधिनियम, 1976[1]

[उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 17, 1976]

उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 01, 1977
उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 13, 1980
उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 02, 1982
उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 13, 1985
उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 06, 1987
उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 07, 1992
उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 05, 2000
उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 12, 2003
उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 04, 2007
उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 19, 2009
उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 15, 2013
उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 01, 2015
उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 04, 2017

द्वारा संशोधित

[उत्तर प्रदेश विधान परिषद् ने दिनांक 1 अप्रैल, 1976 तथा उत्तर प्रदेश विधान सभा में दिनांक 5 अप्रैल, 1976 की बैठक में स्वीकृत किया।

"भारत का संविधान" के अनुच्छेद 201 के अन्तर्गत राष्ट्रपति ने दिनांक 30 अप्रैल, 1976 को अनुमति प्रदान की तथा उत्तर प्रदेश सरकारी असाधारण गजट में दिनांक 1 मई, 1976 को प्रकाशित हुआ।]

राज्य के समस्त लोक सेवकों के सेवायोजन से सम्बद्ध विषयों के सम्बन्ध में विवादों के न्याय निर्णयन के निमित्त [2][एक अधिकरण का गठन] **की व्यवस्था करने के लिये–**

अधिनियम

भारत गणराज्य के सत्ताइसवें वर्ष में निम्नलिखित अधिनियम बनाया जाता है–

संक्षिप्त नाम, विस्तार, प्रारम्भ और लागू होगा

1–(1) यह अधिनियम उत्तर प्रदेश लोक सेवा [3]["अधिकरण"] अधिनियम, 1976 कहा जायेगा।

(2) इसका विस्तार सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में होगा।

(3) यह 24 नवम्बर, 1975 से प्रवृत्त समक्ष जायगा।

(4) यह धारा और धारा 2 और 6 सभी लोक सेवकों के सम्बन्ध में लागू होंगी जबकि शेष उपबन्ध लोक सेवकों के निम्नलिखित वर्गों पर लागू न होंगे, अर्थात् :–

---

1. उद्देश्य व कारणों के विवरण के लिये दिनांक 31 मार्च, 1976 का उत्तर प्रदेशीय असाधारण गजट देखिये।
2. उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 7, 1992 की धारा 2 द्वारा प्रतिस्थापित।
3. उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 7, 1992 की धारा 3 द्वारा प्रतिस्थापित।

(क) न्यायिक सेवा के सदस्य;

[1][(ख) उच्च न्यायालय के या उच्च न्यायालय के अधीनस्थ किसी न्यायालय के अधिकारी या सेवक;]

(ग) राज्य विधान मण्डल के किसी सदन के सचिवालय कर्मचारिवर्ग के सदस्य;

(घ) राज्य लोक सेवा आयोग के कर्मचारिवर्ग के सदस्य;

(ङ) औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 या संयुक्त प्रान्त औद्योगिक झगड़ों का ऐक्ट, सन् 1947 ई0 में परिभाषित कर्मकार (वर्कमैन)।

[2][(च) लोक आयुक्त के कर्मचारिवर्ग के सदस्य।]

[3][(छ) अधिकरण के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सदस्य, अधिकारी या अन्य कर्मचारी।] कर्मचारी।]

संक्षिप्त नाम, विस्तार, प्रारम्भ और लागू होना

2–इस अधिनियम में,– परिभाषायें

(क) ''नियत दिनांक'' का तात्पर्य 24 नवम्बर, 1975 से है;

[4][(क–1) ''न्यायपीठ'' का तात्पर्य अधिकरण की न्यायपीठ से है,

(क–2) ''अध्यक्ष'' का तात्पर्य अधिकरण के अध्यक्ष से है,

[5][(क–2क) ''मुख्य न्यायाधीश'' का तात्पर्य उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से है।]

(क–3) ''जिला न्यायाधीश'' का तात्पर्य बंगाल, आगरा और आसाम सिविल न्यायालय अधिनियम, 1987 के अर्थ में जिला न्यायाधीश से है ;

[6][(क–3क) 'विधिक प्रतिनिधि' का तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है जो किसी मृत व्यक्ति संपदा का विधि की दृष्टि में प्रतिनिधित्व करता हो और इसके अन्तर्गत वह व्यक्ति भी जिसमें पेंशनिक, सेवानिवृत्ति, सेवान्त या अन्य लाभ प्राप्त करने का अधिकार निहित हो।]

(क–4) ''सदस्य'' का तात्पर्य अधिकरण के न्यायिक या प्रशासकीय सदस्य से है और इसके अन्तर्गत अधिकरण का अध्यक्ष और उपाध्यक्ष भी है;]

[7][(कक) 'प्रस्तुतकर्ता अधिकारी' में राज्य सरकार द्वारा नियुक्त सहायक प्रस्तुतकर्ता अधिकारी भी सम्मिलित है।

[8][(ख) ''लोक सेवक'' का तात्पर्य प्रत्येक ऐसे व्यक्ति से है जो निम्नलिखित को सेवा में या उसका वेतन भोगी हो –

(एक) राज्य सरकार; या

(दो) स्थानीय प्राधिकारी जो छावनी बोर्ड न हो; या

[9][(तीन) राज्य सरकार के स्वामित्व पर नियंत्रण में कोई अन्य निगम (जिसके अन्तर्गत कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 3 में यथापरिभाषित ऐसी कम्पनी भी है जिसमें पचास प्रतिशत में अन्यून समादत्त अंश पूंजी राज्य सरकार धारण करती है);] किन्तु इसके अन्तर्गत निम्नलिखित नहीं है :–

---

1. उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 1, 1977 की धारा 2 द्वारा प्रतिस्थापित।
2. उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 13, 1985 की धारा 2 द्वारा प्रतिस्थापित।
3. उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 5, 2000 की धारा 2 द्वारा प्रतिस्थापित।
4. उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 7, 1992 की धारा 4(क) द्वारा बढ़ाया गया।
5. उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 5, 2000 की धारा 3(क) द्वारा बढ़ाया गया।
6. उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 12, 2003 की धारा 2 द्वारा बढ़ाया गया।
7. उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 1, 1977 की धारा 3(एक) द्वारा बढ़ाया गया।
8. उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 1, 1977 की धारा 3(दो) द्वारा प्रतिस्थापित।
9. उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 13, 1980 की धारा 2 द्वारा प्रतिस्थापित।

(1) किसी अन्य कम्पनी का वेतन भोगी या उसकी सेवारत कोई व्यक्ति ; या

(2) अखिल भारतीय सेवाओं या अन्य केन्द्रीय सेवाओं का कोई सदस्य;]

[1][(खख) ''सेवा सम्बन्धी मामले'' का तात्पर्य किसी लोक सेवक के सेवा की शर्तों सम्बन्धित किसी मामले से है।]

[2][(ग) ''अधिकरण'' का तात्पर्य धारा 3 के अधीन गठित अधिकरण से है।

[3][(घ) ''उपाध्यक्ष'' का तात्पर्य अधिकरण के उपाध्यक्ष (न्यायिक) या उपाध्यक्ष उपाध्यक्ष (प्रशासकीय) से है।]

अधिकरण का गठन

[4][**3**–(1) उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अधिकरण) (संशोधन) अधिनियम, 1992 के प्रारम्भ होने के पश्चात् यथाशक्य शीघ्र राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा, एक अधिकरण स्थापित करेगी जिसे राज्य लोक सेवा अधिकरण कहा जाएगा।

(2) अधिकरण में एक अध्यक्ष, [5][एक उपाध्यक्ष (न्यायिक), एक उपाध्यक्ष (प्रशासकीय)] और न्यायिक और प्रशासकीय श्रेणी के कम से कम पांच–पांच अन्य सदस्य उतनी संख्या में होंगे जितनी राज्य सरकार अवधारित करे।

(3) कोई व्यक्ति अध्यक्ष के रूप में नियुक्ति के लिये अर्ह नहीं होगा जब तक कि–

(क) वह किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश न रहा हो, या

(ख) उसने कम से कम दो वर्ष तक उपाध्यक्ष का पद धारण न किया हो, या

(ग) वह भारतीय प्रशासनिक सेवा का ऐसा सदस्य न रहा हो जिसने भारत सरकार के सचिव या उसके समकक्ष केन्द्रीय या राज्य सरकार के अधीन कोई अन्य पद धारण किया हो और जिसे न्याय व्यवस्था का पर्याप्त अनुभव हो।

[6][(4) कोई व्यक्ति उपाध्यक्ष (प्रशासकीय) के रूप में नियुक्ति के लिये अर्ह नहीं होगा जब तक कि–

(क) सुपर टाईम स्केल के जिला न्यायाधीश का पद या उसके समकक्ष कोई अन्य पद धारण न किया हो ; या

(ख) उसने कम से कम दो वर्ष तक न्यायिक सदस्य का पद धारण न किया हो। संयुक्त सचिव के पद के समकक्ष पद धारण न किया हो और उसे राज्य सरकार की राय में न्याय करने का पर्याप्त अनुभव न हो।]

[7][(4–क) कोई व्यक्ति उपाध्यक्ष (प्रशासकीय) के रूप में नियुक्ति के लिये अर्ह नहीं नहीं होगा जब तक कि,–

(क) उसने प्रशासकीय सदस्य का पद धारण न किया हो; या

---

1. उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 5, 2000 की धारा 3(ख) द्वारा बढ़ाया गया।
2. उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 7, 1992 की धारा 4(ख) द्वारा प्रतिस्थापित।
3. उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 5, 2000 की धारा 3(ग) द्वारा प्रतिस्थापित।
4. उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 7, 1992 की धारा 5 द्वारा प्रतिस्थापित।
5. उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 5, 2000 की धारा 4 द्वारा प्रतिस्थापित।
6. उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 19, 2009 की धारा 2 द्वारा प्रतिस्थापित।
7. उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 1, 2015 की धारा 2 द्वारा प्रतिस्थापित।

(ख) उसने राज्य सरकार के अधीन सचिव का पद या भारत सरकार के संयुक्त सचिव के पद के समकक्ष पद धारण न किया हो और उसे राज्य सरकार की राय में न्याय करने का पर्याप्त अनुभव न हो।]

[1][(5) उप धारा (5–क) में जैसी व्यवस्था की गयी है उसके सिवाय फाइनेन्शियल हैण्ड बुक–2 (भाग–2 से 4) में प्रकाशित उत्तर प्रदेश फण्डामेन्टल रूल्स के नियम 56 के उपबन्ध अधिकरण के प्रत्येक सदस्य पर उसी प्रकार लागू रहेंगे जिस प्रकार थे, उसी श्रेणी, पंक्ति या संवर्ग के किसी अन्य सरकारी सेवक पर लागू होते हैं।

परन्तु उपधारा (4) के परन्तुक में निर्दिष्ट कोई न्यायिक सदस्य तब तक पद धारण करता रहेगा जब तक कि उसकी आयु 62 वर्ष की न हो जाये।

5–क–तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुये भी राज्य सरकार किसी ऐसे व्यक्ति को जो अधिवर्षता की आयु प्राप्त कर लेने पर सरकारी सेवा से निवृत्त हो गया हो, न्यायिक सदस्य या प्रशासकीय सदस्य के रूप में पुनर्नियुक्त कर सकती है, यदि वह उपधारा (3) के अधीन ऐसे सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिये अन्यथा पात्र हो, और ऐसा व्यक्ति अपना पद ग्रहण करने के दिनांक से दो वर्ष के अवधि के लिये या जब तक कि उसकी आयु बासठ वर्ष की न हो जाय, इसमें जो भी पहले हो, पद धारण करेगा।]

[2][(6) भारतीय प्रशासनिक सेवा का अधिकारी या रुपये 18400–22400 या उससे अधिक के वेतनमान में प्रान्तीय सविल सेवा (कार्यकारी शाखा) का कोई अधिकारी किसी प्रशासकीय सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिये अर्ह होगा परन्तु यह कि उसे न्याय व्यवस्था का पर्याप्त अनुभव हो।]

(7) अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और प्रत्येक अन्य सदस्य [3][मुख्य न्यायाधीश के परामर्श से राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किये जायेंगे जिसके लिये प्रस्ताव राज्य सरकार द्वारा आरम्भ किया जायेगा। :

परन्तु कोई व्यक्ति यथास्थिति अध्यक्ष, उपाध्यक्ष या अन्य सदस्य का पद धारण नहीं करेगा जब तक कि उसने यथास्थिति उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद से, या भारतीय प्रशासकीय सेवा से या उत्तर प्रदेश उच्चतर न्यायिक सेवा से या उपाध्यक्ष या सदस्य के रूप से भिन्न किसी अन्य सेवा से, जिसमें वह सेवारत था, त्यागपत्र न दे दिया हो या सेवानिवृत्त न हो गया हो।

(8) अध्यक्ष, उपाध्यक्ष या अन्य सदस्य इस रूप में अपना पद धारण करने के दिनांक से पांच वर्ष की अवधि के लिए पद धारण करेगा, किन्तु वह पांच वर्ष की एक और अवधि के लिये पुनर्नियुक्ति के लिये पात्र होगा :

[4][परन्तु कोई अध्यक्ष, उपाध्यक्ष या सदस्य इस रूप में निम्नलिखित आयु प्राप्त करने के पश्चात् पद धारण नहीं करेगा –

(क) अध्यक्ष के मामले में पैंसठ वर्ष की आयु और

(ख) उपाध्यक्ष या किसी सदस्य के मामले में बासठ वर्ष की आयु।]

---

1. उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 6, 1987 की धारा 2 द्वारा प्रतिस्थापित।
2. उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 4, 2007 की धारा 2(क) द्वारा प्रतिस्थापित।
3. उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 5, 2000 की धारा 4(घ) द्वारा प्रतिस्थापित।
4. उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 4, 2017 की धारा 2(ख) द्वारा प्रतिस्थापित।

[1][(8–क) उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अधिकरण) (संशोधन) अधिनियम, 2007 द्वारा यथासंशोधित उपधारा (8) के उपबन्ध उक्त अधिनियम के प्रारम्भ पर अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और अन्य सदस्यों का पद धारण करने वालों पर भी प्रवृत्त होंगे।]

[2][(8–ख) उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अधिकरण) (संशोधन) अधिनियम 2013 द्वारा यथा संशोधित उपधारा (8) के उपबंध उक्त अधिनियम के प्रारम्भ पर अध्यक्ष का पद धारण करने वाले पर भी लागू होंगे।]

[3][(8–ग) उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अधिकरण) (संशोधन) अधिनियम, 2017 द्वारा यथा संशोधित उपधारा (8) के उपबंध, उक्त अधिनियम के प्रारम्भ होने पर पदधारण करने वाले अध्यक्ष, उपाध्यक्ष या किसी सदस्य पर भी लागू होंगे।]

(9) अध्यक्ष, उपाध्यक्ष या कोई अन्य सदस्य राज्यपाल को सम्बोधित स्व–हस्ताक्षरित लिखित सूचना द्वारा अपना पद त्याग सकता है :

परन्तु अध्यक्ष, उपाध्यक्ष या अन्य सदस्य जब तक उन्हें राज्यपाल द्वारा पहले ही पद छोड़ने की अनुज्ञा नहीं दी जाती, सूचना की प्राप्ति के दिनांक से तीन मास की समाप्ति तक या उसके उत्तराधिकारी के रूप में सम्यक् रूप से नियुक्त व्यक्ति के पद संभालने तक या अपनी पदावधि की समाप्ति तक, इनमें जो भी सबसे पहले हो, अपना पद धारण करता रहेगा।

(10) अध्यक्ष, उपाध्यक्ष या कोई अन्य सदस्य, विहित रीति से [4][मुख्य न्यायाधीश द्वारा या उच्च न्यायालय के किसी ऐसे न्यायाधीश द्वारा, जिसे मुख्य न्यायाधीश द्वारा नामनिर्दिष्ट किया जाय, की गयी ऐसी जांच के पश्चात्] जिसमें यथास्थिति ऐसे अध्यक्ष, उपाध्यक्ष या अन्य सदस्य को उसके विरुद्ध लगाये गये आरोपों की सूचना दी गई हो और उन आरोपों के सम्बन्ध में सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर दिया गया हो, साबित दुर्व्यवहार या अक्षमता के आधार पर राज्यपाल द्वारा दिये गये किसी आदेश के सिवाय अपने पद से हटाया नहीं जायेगा।

(11) पद पर न रह जाने पर, अध्यक्ष, उपाध्यक्ष या अन्य सदस्य, राज्य सरकार के, या राज्य सरकार के नियन्त्रणाधीन किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के, या राज्य सरकार के स्वामित्वाधीन या नियन्त्रणाधीन किसी निगम या सोसाइटी के, अधीन अग्रतर नियोजन के लिये पात्र नहीं होंगे :

परन्तु इस अधिनियम के अन्य उपबन्धों के अधीन रहते हुए, कोई उपाध्यक्ष अध्यक्ष के रूप में नियुक्ति के लिये पात्र होगा और कोई सदस्य उपाध्यक्ष या अध्यक्ष के रूप में नियुक्ति के लिए पात्र होगा।

(12) पद पर न रह जाने पर, अध्यक्ष, उपाध्यक्ष या अन्य सदस्य अधिकरण के समक्ष किसी व्यक्ति की ओर से न उपस्थित होगा, न कार्य करेगा और न अभिवचन करेगा।

(13) अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और अन्य सदस्यों को देय वेतन और भत्ते और उनकी सेवा की अन्य शर्तें ऐसी होंगी जैसी राज्य सरकार द्वारा समय–समय पर अवधारित की जायें।

(14) जहां अध्यक्ष अनुपस्थिति या अस्वस्थता या किसी अन्य कारण से अपने कृत्यों का निर्वहन करने में असमर्थ हो, या जहां अध्यक्ष का पद उसकी मृत्यु, पदत्याग या अन्यथा रिक्त हो जाय वहां उपाध्यक्ष, और जहां उपाध्यक्ष उसी तरह अपने कृत्यों का निर्वहन करने में असमर्थ हो या उपाध्यक्ष का पद भी रिक्त हो वहां ऐसा अन्य सदस्य जैसा राज्य सरकार विशेष या सामान्य आदेश द्वारा विनिर्दिष्ट करे, अध्यक्ष के अपने कर्त्तव्यों के पुनः संभालने या यथास्थिति इस अधिनियम के उपबन्धों के अनुसार नियुक्त अध्यक्ष के अपने पद का भार संभालने तक, अध्यक्ष के कृत्यों का निर्वहन करेगा।

---

1. उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 4, 2007 की धारा 2(ग) द्वारा बढ़ाया गया।
2. उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 15, 2013 की धारा 2(ख) द्वारा बढ़ाया गया।
3. उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 4, 2017 की धारा 2(ख) द्वारा बढ़ाया गया।
4. उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 5, 2000 की धारा 5(ङ) द्वारा बढ़ाया गया।

अधिकरण के कर्मचारी

3क–(1) राज्य सरकार अधिकरण की, उसके कृत्यों के निर्वहन में, सहायता करने के लिये, अपेक्षित अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों की प्रकृति और श्रेणियों का अवधारण करेगी और अधिकरण के लिये ऐसे अधिकारियों और कर्मचारियों की व्यवस्था करेगी जैसा वह उचित समझे।

(2) अधिकरण के अधिकारी और अन्य कर्मचारी अध्यक्ष से सामान्य अधीक्षण के अधीन अपने कृत्यों का निर्वहन करेंगे।

(3) अधिकरण के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों के वेतन और भत्तें और उनकी सेवा की शर्तें ऐसी होंगी जैसी विहित की जाये।]

अधिकरण के दावा निर्दिष्ट करना

[1][**4**–(1) इस अधिनियम के अन्य उपबन्धों के अधीन रहते हुए, कोई व्यक्ति, जो लोक सेवक हो या रहा हो और अधिकरण की अधिकारिता के भीतर किसी सेवा सम्बन्धी मामले के सम्बन्ध में किसी आदेश से व्यथित हो, अपनी शिकायत को दूर कराने के लिये अधिकरण की दावा निर्दिष्ट कर सकेगा।

स्पष्टीकरण–इस उपधारा के प्रयोजन के लिये ''आदेश'' का तात्पर्य राज्य सरकार या धारा 2 के खण्ड (ख) में निर्दिष्ट किसी स्थानीय प्राधिकारी या किसी अन्य निगम या कम्पनी द्वारा या राज्य सरकार या ऐसे स्थानीय प्राधिकारी या निगम या कम्पनी के किसी अधिकारी, समिति या अन्य निकाय या अधिकरण द्वारा दिये गये किसी आदेश या लोप या निष्क्रियता से है :

परन्तु यह कि किसी करार के निबन्धनों के अधीन रहते हुये, किसी लोक सेवक के स्थानान्तरण से उत्पन्न होने वाले किसी दावा के बारे में कोई निर्देश नहीं किया जायेगाः

परन्तु यह और कि किसी लोक सेवक की मृत्यु हो जाने की दशा में, उसके विधिक प्रतिनिधि, और जहां दो या दो से अधिक विधिक प्रतिनिधि हों, सभी संयुक्त रूप से, ऐसे मृत लोक सेवक को देय वेतन, भत्ता, ग्रेच्युटी, भविष्य निधि, पेंशन तथा अन्य सेवा सम्बन्धी आर्थिक लाभों हेतु अधिकरण के समक्ष दावा निर्दिष्ट कर सकेंगे।]

(2) उपधारा (1) के अधीन प्रत्येक निर्देश ऐसे प्ररूप में होगा और उसके साथ ऐसे दस्तावेज या अन्य साक्ष्य और ऐसे निर्देश के दाखिल किये जाने के संबंध में ऐसी फीस और आदिशिकाओं के निष्पादन या तामील के लिए ऐसी अन्य फीस, जो विहित की जाये, संलग्न की जायेगी।

(3) उपधारा (1) के अधीन निर्देश की प्राप्ति पर, यदि अधिकरण का, ऐसी जांच करने के पश्चात् जो वह आवश्यक समझे, यह समाधान हो जाय कि संदर्भ उसके न्याय निर्णयन या विचारण के लिये उचित है, तो वह निर्देश ग्रहण करेगा और यदि अधिकरण का इस प्रकार समाधान नहीं होता है तो वह इसके कारणों को अभिलिखित करने के पश्चात उसे संक्षेपतः नामंजूर कर देगा।

(4) जहां कोई निर्देश, उपधारा (3) के अधीन अधिकरण द्वारा ग्रहण कर लिया गया हो, जहां ऐसे निर्देश की विषय वस्तु से सम्बन्धित शिकायतों को दूर करने के बारे में सुसंगत सेवा नियमावली या विनिमय या किसी संविदा के अधीन ऐसी प्रत्येक कार्यवाही का, जो ऐसे निर्देश ग्रहण किये जाने के पूर्व लम्बित है, उपशमन हो जायगा और उसके सिवाय जैसा अधिकरण निर्देश दे, ऐसे विषय के सम्बन्ध में इसके पश्चात् कोई अपील या अभ्यावेदन ऐसी नियमावली, विनिमय या संविदा के अधीन ग्रहण नहीं किया जायेगा।

(5) अधिकरण सामान्यतया कोई निर्देश तब तक ग्रहण नहीं करेगा जब तक कि उसका यह समाधान न हो जाये कि लोक सेवक ने सुसंगत सेवा नियमावली विनिमय या संविदा के अधीन शिकायतों को दूर करने के बारे में उसे उपलब्ध समस्त उपचारों का उपयोग कर लिया है।

---

1. उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 12, 2003 की धारा 3 द्वारा प्रतिस्थापित।

(6) उपधारा (5) के प्रयोजनों के लिए, यदि राज्य सरकार या उसके किसी प्राधिकारी या अधिकारी या ऐसा आदेश पारित करने के लिये सक्षम अन्य व्यक्ति द्वारा, ऐसी नियमावली विनिमय या संविदा के अधीन शिकायत के संबंध में किसी लोक सेवक द्वारा प्रस्तुत की गयी अपील या दिये गये अभ्यावेदन को निरस्त करते हुए कोई अंतिम आदेश दिया गया हो, तो यह समझा जायगा कि लोक सेवक ने उपलब्ध समस्त उपचारों का उपयोग कर लिया है :

परन्तु यह जहां लोक सेवक द्वारा प्रस्तुत की गयी अपील या दिये गये अभ्यावेदन के सम्बन्ध में राज्य सरकार, प्राधिकारी या अधिकारी या ऐसा आदेश पारित करने के लिए सक्षम अन्य व्यक्ति द्वारा ऐसी अपील प्रस्तुत करने या अभ्यावेदन देने के छः माह के भीतर कोई अन्तिम आदेश न दिया गया हो, वहां लोक सेवक रजिस्ट्रीकृत डाक से लिखित सूचना द्वारा ऐसे सक्षम प्राधिकारी से आदेश पारित करने की अपेक्षा कर सकता है और यदि ऐसी सूचना की तामील के एक मास के भीतर आदेश पारित नहीं किया जाता है तो यह समझा जायगा कि लोक सेवक ने उपलब्ध समस्त उपचारों का उपयोग कर लिया है।

(7) उपधारा (5) और (6) के प्रयोजनों के लिए यदि राज्यपाल या किसी अन्य कृत्यकारों को कोई अभ्यावेदन प्रस्तुत करने के लिऐ कोई उपचार किसी लोक सेवक को उपलब्ध है तो ऐसे उपचार को उपलब्ध उपचारों में से कोई उपचार तब तक नहीं समझा जायेगा, जब तक कि लोक सेवक ऐसा अभ्यावेदन प्रस्तुत करने का चयन नहीं करता है।]

अधिकरण द्वारा निर्देश की सुनवाई

[1][**4**–(क) (1) अध्यक्ष दावों के ऐसे निर्देशों और अन्य विषयों के, जैसे उसके द्वारा विनिर्दिष्ट किये जायें, निस्तारण के लिये समय–समय पर न्याय पीठों का गठन कर सकता है जिसमें एक सदस्य या दो सदस्य होंगे।

(2) अध्यक्ष के लिये यह विधिपूर्ण होगा कि वह ऐसे किसी एक न्यायपीठ के सदस्य के रूप में स्वयं को नाम निर्दिष्ट करे।

(3) दो सदस्यों से गठित न्यायपीठ में एक न्यायिक सदस्य और एक प्रशासकीय सदस्य होगा।

(3) दो सदस्यों से गठित न्यायपीठ में एक न्यायिक सदस्य और एक प्रशासकीय सदस्य होगा।

[2][**स्पष्टीकरण :** इस उपधारा के प्रयोजन के लिये अध्यक्ष, जो उच्च न्यायालय का न्यायाधीश या जिला न्यायाधीश रहा हो या कोई उपाध्यक्ष, जो जिला न्यायाधीश रहा हो, न्यायिक सदस्य समझा जाएगा और कोई अध्यक्ष या उपाध्यक्ष, जो भारतीय प्रशासनिक सेवा का सदस्य या रु0 18400–22400 या उससे अधिक के वेतनमान में प्रान्तीय सिविल सेवा (कार्यकारी शाखा) का कोई अधिकारी रहा हो प्रशासकीय सदस्य समझा जाएगा।]

(4) अधिकरण की अधिकारिता, शक्ति और प्राधिकार का प्रयोग ऐसी किसी न्यायपीठ द्वारा किया जा सकता है और ऐसी किसी न्यायपीठ द्वारा ऐसी अधिकारिता, शक्ति या प्राधिकार का प्रयोग करके किये गये किसी कार्य की अधिकरण द्वारा कृत कार्य समझा जायेगा।

(5) [3][(क) अनुसूची में विनिर्दिष्ट किसी मामले से सम्बन्धित किसी आदेश के विरुद्ध दावे के किसी निदेश की सुनवाई और उसका अन्तिम विनिश्चय दो सदस्यों से गठित न्यायपीठ द्वारा किया जायेगा :

---

1. उ0प्र0 अधिनियम संख्या 7, 1992 की धारा 7 द्वारा बढ़ाया गया।
2. उ0प्र0 अधिनियम संख्या 4, 2007 की धारा 3 द्वारा प्रतिस्थापित।
3. उ0प्र0 अधिनियम संख्या 5, 2000 की धारा 6(क) द्वारा प्रतिस्थापित।

परन्तु एक सदस्य द्वारा साक्ष्य लिया जा सकता है और उसकी कार्यवाही को संचालित किया जा सकता है।]

(ख) खण्ड (क) में निर्दिष्ट दावे के निर्देश से भिन्न दावे के निर्देश की सुनवाई और उसका अन्तिम रूप से विनिश्चय एक सदस्य से गठित न्यायपीठ द्वारा किया जा सकता है।

(ग) अध्यक्ष, [1][स्वप्रेरणा से या दावे के किसी निर्देश के किसी पक्षकार के आवेदन पर] किसी मामले का अन्तरण एक न्यायपीठ से दूसरी न्यायपीठ की कर सकता है।

(6) जहां दो सदस्यों से गठित किसी न्यायपीठ के सदस्य किसी मामले में सहमत न हों तो मामला अध्यक्ष द्वारा नाम निर्दिष्ट किसी अन्य सदस्य को निर्दिष्ट किया जायेगा और ऐसे अन्य सदस्य का विनिश्चय अन्तिम और प्रभावी होगा।

(7) इस अधिनियम के अधीन कार्य सम्पादन के लिये अधिकरण, उसकी न्यायपीठ और सदस्यों की बैठक लखनऊ में या ऐसे अन्य स्थान पर, जैसा राज्य सरकार निर्देश दे, होगी।]

अधिकरण की शक्ति और प्रक्रिया

5–(1) (क) अधिकरण सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 में निर्धारित प्रक्रिया या भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1972 में दिये गये साक्ष्य नियमों से बाध्य नहीं होगा, किन्तु नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों द्वारा मार्गदर्शित होगा, और इस धारा से उपबन्धों और धारा 7 के अधीन बनाये गये किन्हीं नियमों के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, अधिकरण को अपनी प्रक्रिया (जिसमें अपनी बैठक का स्थान और समय नियत करना और यह विनिश्चित करना भी सम्मिलित है कि बैठक सार्वजनिक या असार्वजनिक तौर पर की जाय) विनियमित करने की शक्ति होगी।)

[2][परन्तु जहां किसी निर्देश की विषय वस्तु के सम्बन्ध में, सक्षम न्यायालय ने पहले ही डिक्री या आदेश पारित कर दिया है या समादेश (रिट) जारी कर दिया है या निदेश दे दिया है और ऐसी डिक्री, आदेश, समादेश या निदेश अन्तिम हो गया है, वहां पूर्व न्याय का सिद्धान्त लागू होगा।]

अधिनियम संख्या 36, 1963

[3][(ख) धारा 4 के अधीन किसी निर्देश पर परिसीमा अधिनियम, 1963 के उपबन्ध यथावश्यक परिवर्तन सहित, लागू होंगे मानो, निर्देश सिविल न्यायालय में दाखिल किया गया कोई वाद हो किन्तु–

(1) उक्त अधिनियम की अनुसूची में विहित परिसीमा–काल के होते हुए भी, ऐसे निर्देश के लिये परिसीमा–काल एक वर्ष होगा ;

(2) परिसीमा–काल की संगणना करने में, उस दिनांक से जब लोक–सेवक अपनी सेवा की शर्तों की विनियमित करने वाले नियमों या आदेशों के अनुसार कोई अभ्यावेदन करता है या कोई अपील, पुनरीक्षण या कोई अन्य याचिका (जो राज्यपाल को दिया गया विनिवेदन न हो) प्रस्तुत करता है, प्रारम्भ होने वाली, और उस दिनांक को जब ऐसे लोक–सेवक को, यथास्थिति, ऐसे अभ्यावेदन, अपील, पुनरीक्षण या याचिका पर दिये गये अंतिम आदेश की जानकारी हो, समाप्त होने वाली अवधि को सम्मिलित नहीं किया जायगाः

---

1. उ0प्र0 अधिनियम संख्या 5, 2000 की धारा 6(ख) द्वारा प्रतिस्थापित।
2. उ0प्र0 अधिनियम संख्या 1, 1977 की धारा 4(i) द्वारा बढ़ाया गया।
3. उ0प्र0 अधिनियम संख्या 13, 1985 की धारा 4(क) द्वारा प्रतिस्थापित।

परन्तु कोई निर्देश जिनके लिये परिसीमा अधिनियम, 1963 द्वारा विहित परिसीमा–काल एक वर्ष से अधिक हो, धारा 4 के अधीन निर्देश उस अधिनियम द्वारा विहित अवधि के भीतर या उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अधिकरण) (संशोधन) अधिनियम, 1985 के प्रारम्भ से ठीक एक वर्ष के भीतर, इसमें जो भी अवधि पहले समाप्त होती हो, किया जा सकता है :

परन्तु यह और कि उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अधिकरण) (संशोधन) अधिनियम, 1985 द्वारा यथा प्रतिस्थापित इस खण्ड की किसी बात का कोई प्रभाव किसी ऐसे निर्देश पर नहीं पड़ेगा जो उक्त अधिनियम के प्रारम्भ होने के पूर्व किया गया औा विचाराधीन हो।]

परन्तु यदि उच्च न्यायालय के अधीनस्थ किसी न्यायालय ने धारा 4 में उल्लिखित किसी विषय के सम्बन्ध में नियत दिनांक से पूर्व डिक्री पारित किया हो या किसी वाद या अपील की पैरवी के अभाव में खारिज करने का आदेश पारित किया हो और वह डिक्री या आदेश अन्तिम न हुआ हो तो ऐसे न्यायालय के विनिश्चय से व्यथित कोई लोक सेवक या उसका सेवायोजक नियत दिनांक से साठ दिन के भीतर अधिकरण को निर्देश कर सकता है, और अधिकरण ऐसी डिक्री का पुष्टीकरण, परिष्कार या अपाकरण कर सकता है (किन्तु मामला किसी ऐसे न्यायालय को प्रतिप्रेषित नहीं कर सकता), और अधिकरण का ऐसा विनिश्चय अन्तिम होगा।

(2) अधिकरण प्रत्येक निर्देश को यथाशीघ्र विनिश्चित करेगा और साधारणतया प्रत्येक मामला दस्तावेजों और अभ्यावेदनों के परिशीलन और [1][मौखिक या लिखित बहस], यदि कोई हो, के आधार पर विनिश्चित किया जायगा।

(3) अधिकरण साक्ष्य में, किसी मूल दस्तावेज के बदले, किसी राजपत्रित अधिकारी या नोटरी द्वारा प्रमाणित उसकी प्रतिलिपि ग्रहण कर सकता है।

(4) अधिकरण साधारणतया मौलिक साक्ष्य पेश करने को न कहेगा और न अनुज्ञा देगा, और यदि आवश्यक हो, किसी पक्षकार से शपथ–पत्र दाखिल करने की अपेक्षा कर सकता है।

(5) अधिकरण को इस अधिनियम के अधीन कोई जांच करने के प्रयोजनार्थ उपधारा (1) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, निम्नलिखित बातों के संबंध में वही शक्तियां होंगी जो किसी वाद पर विचार करते समय सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अधीन किसी सिविल न्यायालय में निहित है :– **अधिनियम संख्या 5, 1908**

(क) किसी व्यक्ति को समन करना और उसे उपस्थित होने के लिए बाध्य करना और शपथ पर उसकी परीक्षा करना ;

(ख) दस्तावेजों को प्रकट और प्रस्तुत करने की अपेक्षा करना ;

(ग) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 123 और 124 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, किसी कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रतिलिपि की अभियाचना करना ; **अधिनियम संख्या 1, 1872**

(ङ) साक्षियों या दस्तावेजों को परीक्षा के लिए कमीशन जारी करना ;

(च) विधिपूर्ण करार, समझौता या तुष्टि को अभिलिखित करना और तदनुसार आदेश देना;

1. उ0प्र0 अधिनियम संख्या 13, 1985 की धारा 4(ख) द्वारा प्रतिस्थापित।

(छ) अपने विनिश्चय का पुनर्विलोकन करना ;

(ज) व्यतिक्रम के लिए कोई निर्देश खारिज करना या उस पर एक पक्षीय विनिश्चय देना ;

(झ) व्यतिवम के लिए खारिज किये गये किसी आदेश या अपने द्वारा दिये गये एक पक्षीय आदेश को अपास्त करना ;

(ञ) किसी निर्देश पर अन्तिम विनिश्चय होने तक, ऐसी शर्तों पर, यदि कोई हों, जिन्हें आरोपित करना वह उचित समझे, अन्तर्वती आदेश देना ;

(ट) कोई अन्य विषय जो विहित किया जाय।

[1] [(5—क) अधिकरण किसी निर्देश से सम्बन्धित किसी कार्यवाही पर या कार्यवाही में कोई अन्तरिम आदेश (व्यादेश या स्थगन के रूप में या किसी अन्य रीति से) तब तक नहीं देगा, जब तक कि—

(क) ऐसे निर्देश की और अन्तरिम आदेश के लिये आवेदन की प्रतिलिपियां, ऐसे अन्तरिम आदेश के लिये दलील के समर्थन में सभी दस्तावेजों के साथ, उस पक्षकार को न दी जाये, जिसके विरुद्ध ऐसी याचिका प्रस्तुत की जाती है; और

(ख) ऐसे पक्षकार को उत्तर प्रस्तुत करने के लिये कम से कम चौदह दिन का समय न दे दिया जाय और उस विषय में सुनवाई का अवसर न दे दिया जाय :

परन्तु अधिकरण खण्ड (क) और (ख) की अपेक्षाओं को अभिमुक्त कर सकता है और यदि उसका समाधान हो जाता है कि प्रार्थी की किसी हानि, का, जिसकी क्षतिपूर्ति धन द्वारा पर्याप्त रूप से नहीं की जा सकती है, निवारण करने के लिये ऐसा करना आवश्यक है तो कारण का अभिलेख करते हुए अपवाद स्परूप अन्तरिम आदेश दे सकता है, किन्तु कोई ऐसा अन्तरिम आदेश, यदि उसे पहले अभिशून्य न कर दिया जाय, उस दिनांक से, जब वह दिया जाय, चौदह दिन की अवधि को समाप्ति पर प्रभावी न रह जायगा, जब तक कि उक्त अवधि की समाप्ति के पूर्व उक्त अपेक्षाओं का अनुपालन न किया गया हो और अधिकरण ने उस आदेश के प्रवर्तन को जारी न रखा हो।

(5—ख) पूर्ववर्ती उप धाराओं में किसी बात के होते हुए भी, अधिकरण को किसी लोक—सेवक के निलम्बन, पदच्युति तथा पदावतति, सेवा—समाप्ति, अनिवार्य सेवानिवृत्त या प्रत्यावर्तन के लिये सेवायोजक द्वारा दिये गये या दिये जाने के लिये तात्पर्यित आदेश के सम्बन्ध में अन्तरिम आदेश (व्यादेश पर स्थगन के रूप में या किसी अन्य रीति से) देने की शक्ति नहीं होगी और ऐसे विषयों के सम्बन्ध में प्रत्येक अन्तरिम आदेश (व्यादेश या स्थगन के रूप में या किसी अन्य रीति से) जिसे अधिकरण ने इस उपधारा के प्रारम्भ के दिनांक के पूर्व दिया या और जो उस दिनांक को प्रवृत्त था, अभिशून्य हो जायगा।]

1. उ0प्र0 अधिनियम संख्या 1, 1977 की धारा 4(ii) द्वारा बढ़ाया गया।

[1][(5–ग) पूर्ववर्ती उपधाराओं में किसी बात के होते हुए भी, अधिकरण को किसी लोक सेवक के विरुद्ध सेवायोजक द्वारा की गयी प्रतिकूल प्रविष्टि के सम्बन्ध में अन्तरिम आदेश (व्यादेश या स्थगन के रूप में या किसी अन्य रीति से) देने की शक्ति नहीं होगी और ऐसी प्रतिकूल प्रविष्टि के सम्बन्ध में प्रत्येक अन्तरिम आदेश (व्यादेश या स्थगन के रूप में या किसी अन्य रीति से) जिसे अधिकरण ने उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अधिकरण) (संशोधन) अधिनियम, 2000 के प्रारम्भ होने से पूर्व दिया था और जो ऐसे प्रारम्भ होने के दिनांक को प्रवृत्त है, अभिशून्य हो जायगा।]

(6) अधिकरण द्वारा की गई कोई घोषणा दावेदार और उसके सेवायोजक पर और किसी ऐसे अन्य लोक सेवक पर बन्धनकारी होगी जिस दावा के संबंध में जिससे उसके हित पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो, उसके विरुद्ध अभ्यावेदन देने का अवसर दिया गया हो, और उसका किसी विधि न्यायालय द्वारा की गई घोषणा के समान प्रभाव होगा।

[2][(7) किसी निर्देश को अन्तिम रूप से निस्तारित करने वाले, अधिकरण के आदेश का निष्पादन उसी रीति से किया जायेगा जिस रीति से निर्देश से संगत, दावेदार के सेवायोजन के किसी मामले में, उसके द्वारा प्रस्तुत किसी अपील या अभ्यावेदन में, शिकायतों को दूर करने से संबंधित सुसंगत सेवा नियमों के अधीन ऐसा आदेश देने के लिए सक्षम, राज्य सरकार, या अन्य प्राधिकारी या अधिकारी, या अन्य व्यक्ति के ऐसे अन्तिम आदेश का निष्पादन किया जाता]

(8) (क) सेवायोजक अधिकरण के समक्ष अपना मामला प्रस्तुत करने के लिये कोई लोक सेवक या विधि व्यवसायी नियुक्त कर सकता है जो प्रस्तुतकर्ता अधिकारी कहलायेगा।

(ख) लोक सेवक अपनी ओर से अधिकरण के समक्ष अपना मामला प्रस्तुत करने के लिये किसी अन्य लोक सेवक की सहायता ले सकता है, किन्तु इस प्रयोजनार्थ कोई विधि व्यवसायी केवल उस दशा में रख सकेगा जब तक कि या तो (1) सेवायोजक द्वारा नियुक्त प्रस्तुतकर्ता अधिकारी कोई विधि व्यवसायी हो या (2) अधिकरण, मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ऐसी अनुज्ञा दे।

(9) अधिकरण के समक्ष किसी कार्यवाही को भारतीय दण्ड संहिता की [3][धारा 193, 219] और 228 के अर्थान्तर्गत न्यायिक कार्यवाही समझा जायेगा। **अधिनियम संख्या 45, 1860**

(10) किसी निर्देश पर या किसी निर्देश के उत्तर पर या किसी आवेदन पत्र पर या तो नियुक्ति प्राधिकारी या प्रस्तुतकर्ता अधिकारी या जहां नियुक्ति अधिकारी राज्यपाल हों वहां राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत उप सचिव से अनिम्न पद के किसी अधिकारी द्वारा और किसी स्थानीय प्राधिकारी, निगम या कम्पनी की स्थिति में, उसके मुख्य कार्यपालक अधिकारी या सचिव द्वारा यथास्थिति, हस्ताक्षर किया जा सकता है।

अवमान के लिए शास्ति को शक्ति

[4] **[5**–(क) न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 के अधीन उच्च न्यायालय की, उसके अधीनस्थ न्यायालयों के अवमान के सम्बन्ध में, अधिकारिता, शक्तियों और प्राधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, अधिकरण को अपने अवमान के संबंध में वही अधिकारिता, शक्तियां और प्राधिकार होंगे और उसके द्वारा उनका प्रयोग किया जायेगा जो कि उच्च न्यायालय को अपने अवमान के सम्बन्ध में है और उसके द्वारा उनका प्रयोग किया जा सकता है, और इस प्रयोजन के लिए न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 के उपबन्ध, यथावश्यक परिवर्तन सहित, निम्नलिखित उपान्तरों के अधीन, लागू होंगे, अर्थात् :–

1. उ0प्र0 अधिनियम संख्या 5, 2000 की धारा 7(क) द्वारा बढ़ाया गया।
2. उ0प्र0 अधिनियम संख्या 7, 1992 की धारा 8 द्वारा प्रतिस्थापित।
3. उ0प्र0 अधिनियम संख्या 5, 2000 की धारा 7(ख) द्वारा प्रतिस्थापित।
4. उ0प्र0 अधिनियम संख्या 7, 1992 की धारा 9 द्वारा बढ़ाया गया।

(क) उसमें उच्च न्यायालय, उसके मुख्य न्यायाधीश और अन्य न्यायाधीशों के प्रति निर्देश को क्रमशः अधिकरण, उसके अध्यक्ष और अन्य सदस्यों के प्रति निर्देश समझा जायेगा ;

(ख) उक्त अधिनियम की धारा 15 में महाधिवक्ता के प्रति निर्देश को [1][दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 24 की उपधारा (1) के अधीन राज्य सरकार द्वारा नियुक्त लोक अभियोजक या ऐसे अन्य विधि अधिकारी के] जिसे राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा, इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे, प्रति निर्देश समझा जायेगा ;

(ग) उक्त अधिनियम की धारा 19 में,—

(एक) उपधारा (1) के स्थान पर निम्नलिखित उपधारा रख दी जायेगी, अर्थात् :—

(1) अवमान के लिये शास्ति देने की अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए अधिकरण द्वारा दिये गये किसी आदेश या विनिश्चय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में साधिकार अपील होगी।

(दो) उपधारा (4) के स्थान पर निम्नलिखित उपधारा रख दी जायेगी, अर्थात् :—

(4) उपधारा (1) के अधीन अपील उस आदेश के दिनांक से जिसके विरुद्ध अपील की जाय, साठ दिन के भीतर की जायगी।]

वाद पर रोक

6—(1) किसी व्यक्ति के, जिसके अन्तर्गत धारा 1 की उपधारा (4) के खण्ड [2][(क) से (छ)] में विनिर्दिष्ट वर्गों के व्यक्ति भी हैं, अनुरोध पर लोक सेवक है या रह चुका है, सेवायोजन से सम्बन्धित किसी बात के सम्बन्ध में किसी अनुतोष के लिये कोई वाद राज्य सरकार या किसी स्थानीय प्राधिकारी या किसी संविधिक निगम या कम्पनी के विरुद्ध ग्राह्य नहीं होगा।

(2) नियत दिनांक से ठीक पूर्ववर्ती दिनांक को उच्च न्यायालय के अधीनस्थ किसी न्यायालय के समक्ष विचाराधीन समान अनुतोष के लिये सभी वाद, और ऐसे वादों से प्रोद्भूत होने वाली सभी अपील, पुनरीक्षण, पुनर्विलोकन के लिये आवेदन—पत्र और अन्य अनुषंगी या सहायक कार्यवाहियां (जिसके अन्तर्गत सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की प्रथम अनुसूची के आदेश 39 के अधीन सभी कार्यवाहियां भी हैं), और अकिंचन के रूप में समान अनुतोष के लिये वाद या अपील प्रस्तुत करने की अनुज्ञा के लिये सभी आवेदन—पत्र और उच्च न्यायालय के समक्ष विचाराधीन अन्तर्वर्ती आदेशों से प्रोद्भूत होने वाले सभी पुनरीक्षण उपशमित हो जायेंगे, और उनके अभिलेख [3][अधिकरण को अन्तरित कर दिये जायेंगे] और तदुपरान्त अधिकरण उन मामलों पर उसी रीति से विनिश्चय देगा मानो वे धारा 4 के अधीन उसे निर्दिष्ट दावे हों :

अधिनियम संख्या 5, 1908

परन्तु अधिकरण, धारा 5 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए उसी प्रक्रम से कार्यवाही फिर से प्रारम्भ करेगा, जिस पर मामला उपर्युक्त प्रकार से उपशमित किया गया था और न्यायालय में प्रस्तुत अभिवचन या पेश किये गए किसी मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य पर कार्यवाही करेगा मानों वह अधिकरण के समक्ष प्रस्तुत या पेश किये गये थे।

(3) नियत दिनांक के ठीक पूर्ववर्ती दिनांक को उच्च न्यायालय के समक्ष ऐसे वादों से प्रोद्भूत होने वाली विचाराधीन सभी अपीलों को सुनवाई और निस्तारण उस न्यायालय द्वारा पूर्ववत किया जायगा मानों वह अधिनियम प्रवृत्त न हुआ हो :

---

1. उ0प्र0 अधिनियम संख्या 5, 2000 की धारा 8 द्वारा प्रतिस्थापित।
2. उ0प्र0 अधिनियम संख्या 5, 2000 की धारा 9 द्वारा प्रतिस्थापित।
3. उ0प्र0 अधिनियम संख्या 7, 1992 की धारा 10 द्वारा प्रतिस्थापित।

परन्तु यदि उच्च न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की प्रथम अनुसूची के आदेश 41 के नियम 23 या नियम 25 के अधीन मामला प्रतिप्रेषित या प्रतिनिर्देशित करना आवश्यक समझयें तो प्रतिप्रेषण या निर्देश का आदेश सम्बद्ध अधीनस्थ न्यायालय के बजाय ऐसे [1][अधिकरण को सम्बोधित होगा] और तदुपरांत अधिकरण, उच्च न्यायालय के निदेश के अधीन रहते हुए मामला या विवाद पर उसी प्रकार विनिश्चय देगा मानों यह धारा 4 के अधीन उसे निर्दिष्ट कोई दावा हो। **अधिनियम संख्या 5, 1908**

अधिकरण के सदस्य और कर्मचारिवृन्द लोक सेवक होंगे

[2][**6**–क भारतीय दण्ड संहिता की धारा 21 के अर्थान्तर्गत अधिकरण के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सदस्य, अधिकारी और अन्य कर्मचारी लोक सेवक समझे जायेंगे।

सद्भावनापूर्वक की गई कार्यवाही का संरक्षण

6–ख (1) इस अधिनियम या उसके अधीन बनाये गये नियमों के उपबन्धों के अनुसरण में सद्भावपूर्वक की गयी या किये जाने के लिये आशयित किसी बात के लिये अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सदस्य या किसी अन्य व्यक्ति के विरुद्ध कोई वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही नहीं की जायेगी।

सदस्य न्यायाधीश होंगे

6–ग अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और सदस्य, न्यायाधीश (संरक्षण) अधिनियम, 1985 और न्यायिक अधिकारी संरक्षण अधिनियम, 1850 के प्रयोजनों के लिये न्यायाधीश समझे जायेंगे

नियम बनाने की शक्ति

7–(1) राज्य सरकार, इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिये अधिसूचना द्वारा नियत बना सकती है।

[3][(2) विशेषतः और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किसी विषय की व्यवस्था की जा सकती है, अर्थात् :–

(क) अधिकरण की शक्तियां और प्रक्रिया ;

(ख) न्यायपीठों का गठन और उनके बीच कार्य का वितरण ;

[4][(ग) वह प्रारूप जिसमें किसी दावे का निर्देश लिया जा सकता है, दस्तावेज और अन्य साक्ष्य जो ऐसे निर्देश के साथ संलग्न होंगे और ऐसे निर्देश को दाखिल किये जाने के सम्बन्ध में या आदेशिकाओं के निष्पादन या तामील के लिए देय फीस।

(घ) अधिकरण के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सदस्यों, अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को देय वेतन और भत्ते और सेवा की अन्य शर्तें ;

(ङ) अध्यक्ष की वित्तीय और प्रशासकीय शक्तियां ;

(च) कोई अन्य विषय जिसके लिये इस अधिनियम में अपर्याप्त उपबन्ध और राज्य सरकार उस निमित्त उपबन्ध बनाना आवश्यक या समाचीन समझे।

(3) उपधारा (2) के खण्ड (घ) के अधीन नियम बनाने की शक्ति के अन्तर्गत भूतलक्षी प्रभाव से ऐसे नियम या उनमें से कोई नियम ऐसे दिनांक से, जो उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अधिकरण) (संशोधन) अधिनियम, 1992 के प्रारम्भ के दिनांक से पहले का न हो, बनाने की शक्ति भी है, किन्तु कोई ऐसा भूतलक्षी प्रभाव किसी ऐसे नियम को नहीं दिया जायेगा जिससे किसी ऐसे व्यक्ति के, जिस पर ऐसे नियम प्रयोज्य हो, हित पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े।]

1. उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 7, 1992 की धारा 10 द्वारा प्रतिस्थापित।
2. उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 5, 2000 की धारा 10 द्वारा बढ़ाया गया।
3. उ0 प्र0 अधिनियम संख्या 7, 1992 की धारा 11 द्वारा प्रतिस्थापित।
4. उ0प्र0 अधिनियम संख्या 5, 2000 की धारा 11 द्वारा प्रतिस्थापित।

निरसन, अपवाद और संक्रमणकालीन उपबन्ध

8–(1) उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अधिकरण) अध्यादेश, 1976 एतद्द्वारा निरसित किया जाता है।

उत्तर प्रदेश अध्यादेश संख्या 8, 1976

(2) ऐसे निरसन या उपधारा (1) में उल्लिखित अध्यादेश द्वारा उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अधिकरण) अध्यादेश, 1975 के निरसन के होते हुए भी, उक्त अध्यादेशों के अधीन किया गया कोई कार्य या की गयी कोई कार्यवाही इस अधिनियम के अधीन किया गया कार्य या की गयी कार्यवाही समझी जायगी मानों यह अधिनियम सभी सारभूत समय पर प्रवृत्त था।

(3) इस अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) के खण्ड (ख) के परन्तुक में उल्लिखित आदेश और इस अधिनियम की धारा 6 की उपधारा (2) में निर्दिष्ट आवेदन–पत्रों के सम्बन्ध में, जो 1975 के उक्त अध्यादेश के तत्समान उपबन्धों में उल्लिखित न थे, नियत दिनांक के प्रति निर्देश का अर्थ 16 फरवरी, 1976 के प्रति निर्देश से लगाया जायगा।

[1][अनुसूची

[धारा 4–क (5) (क) देखिये]

मामले जिनकी सुनवाई और अन्तिम विनिश्चय, दो सदस्यों से गठित न्यायपीठ द्वारा किया जायेगा।

1–निम्नलिखित से सम्बन्धित किसी आदेश के विरुद्ध दावों के समस्त निर्देशः–

(क) किसी लोक सेवक की पदोन्नति ज्येष्ठता, जन्मतिथि या अधिवर्षिता का दिनांक ;

(ख) धारा 2 के खण्ड (ख) में निर्दिष्ट किसी सेवा में विनियमितीकरण ;

(ग) किसी लोक सेवक की पदच्युति, हटाये जाने, प्रत्यावर्तन या पदावनति, वेतनवृद्धि पर स्थायी रोक, सेवा में व्यवधान, अनिवार्य सेवानिवृत्ति, निलम्बन, सेवा समाप्ति या त्याग–पत्र;

(घ) किसी सेवानिवृत्त लोक सेवक की पेंशन का पूर्णतः या अंशतः रोका जाना या प्रत्याहरण करना, पेंशन से वसूली और पेंशन के लिए अवधि की गणना।

2–अवमानना के सभी मामले।

3–उपर्युक्त मामलों से सम्बन्धित आदेशों के विरुद्ध दावों के निर्देश का ग्रहण किया जाना।]

---

1. उ0प्र0 अधिनियम संख्या 5, 2000 की धारा 12 द्वारा बढ़ाया गया।